International Journal of Applied Research 2019; 5(1): 510-513

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(1): 510-513
www.allresearchjournal.com
Received: 23-11-2018
Accepted: 27-12-2018

डॉ. वीरेन्द्र कुमार यादव
हथलेटवा, कमलाबाड़ी, जयनगर, मधुबनी, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. वीरेन्द्र कुमार यादव
हथलेटवा, कमलाबाड़ी, जयनगर, मधुबनी, बिहार, भारत

मिथिला के प्रमुख नरेश एवं उनके द्वारा संरक्षित साहित्यकार

डॉ. वीरेन्द्र कुमार यादव

सारांश
यह सत्य है कि मिथिला की प्रसिद्धि राजाओं की तलवार की धार के कारण कभी नहीं रही, बल्कि यह विधा–बुद्धि के कारण जगत् में विख्यात रही है। विदेह राजकुल के समय में भी शस्त्र से अधिक जोर शास्त्र पर ही रहा। फिर भी विदेहराज द्वारा मथुरा नरेश संकाश्य की पराजय और अन्य कई वृत्तान्तों में मिथिला नरेशों के बाहुबल की बात भी सामने आती है।

मुख्य–शब्दः मिथिला, संरक्षित साहित्यकार

प्रस्तावना
नान्यदेव ने सन् 1097 ई. में मिथिला में स्वतंत्र राज्य की स्थापना की थी। ये कर्णाट वंश के थे और इस वंश का शासन मिथिलांचल में 1097 ई. से 1324 ई. तक रहा। तत्पश्चात् 1355 ई. से 1526 ई. तक मिथिला में ओइनवार वंश का शासन रहा। इस वंश के प्रथम शासक पण्डित कामेश्वर ठाकुर थे जो ओइनवार मूल के कश्यप–गोत्रीय ब्राह्मण थे। इसलिए कामेश्वर ठाकुर के राजकुल को ओइनवार राजवंश कहा जाता है। सन् 1556 ई. से 1962 ई. तक मिथिला में खण्डवला राजकुल का शासन रहा। सन् 1556 ई. में कामेश्वर ठाकुर ने मिथिला में खण्डवला राजवंश की नींव रखा। महेश ठाकुर के पूर्वज संकर्षण के खण्डवा ग्राम में निवास करते थे। इस कारण उसका वंश 'खण्डवला' या 'खण्डवाला' कुल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार मिथिला में सन् 1097 ई. से लेकर 1962 ई. तक तीन राजवंशों का शासन रहा।
श्रीधर मिथिला के ही निवासी नरंगवाली कर्ण कायस्थ थे। नान्यदेव के साथ जुड़ने से पूर्व वे सेन साम्राज्य में महामाण्डलिक थे।[1] इन्होंने नान्यदेव के सामन्त चूड़ामणि, महामत्तक, महामात्य तथा महाधर्माधिकरणिक जैसे पदों को सुशोभित किया। इन दोनों प्रातियों के मणि–कांचन योग ने मिथिला में स्वर्णयुग की सरिता बहा दी। श्रीधर ने लक्ष्मणसेन के महामण्डलिक काल में 'सदुक्ति कर्णामृत' का प्रणयन किया था। साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली ने 2007 ई. में पंडित राधाबल्लभ त्रिपाठी के सम्पादकत्व में इसे प्रकाशित कराया है। 5 प्रवाह और 476 वीचियों में 500 से अधिक कवियों के रससिद्ध 2380 श्लोकों का सुगुम्फन श्रीधर के असाधारण सम्पादकत्व को रूपायित करता है। एक विषय पर एक साथ कई कवियों की रचनाएँ एक जगह इस तरह सुगुम्फित हैं कि इस का पूर्ण परिपाक हो जाता है। कालिदास, वल्लन, गोवर्धन, राजशेखर, रूदट, धोयी, अमरसिंह, उमापति प्रभृति लगभग 500 कवियों की रचनाओं का एक जगह रसास्वादन विलक्षण अनुभव है।
श्रीधर विविध–विद्या–विशारद्, प्रचण्ड तेजस्वी, अनुपम कूटनीतिज्ञ, अद्भुत योजनाकार, समरांगन–श्रेष्ठ योद्धा, विशिष्ट ज्योतिर्विद, निष्कलंक न्यायकर्त्ता, उत्कृष्ट वास्तुविद्, काव्य–कला–कुशल कवि, संगीत सरिता मर्मज्ञ, निपुण चित्रकार, अद्वितीय व्यवस्थापक के साथ–साथ बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। मिथिलांचल के इस वरद् पुत्र को 'अपर चाणक्य' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगा।
नान्यदेव की आज्ञा से वासुदेवोपाध्याय ने 'शांति पौष्टिक प्रकरण ग्रंथ' की रचना की। वासुदेवापाध्याय के पुत्र दिवाकर तथा प्रभाकार उदयन की रचनाओं के आदि व्याख्याकार हुए।
रामसिंह देव नान्यदेव की चौथी पीढ़ी के मिथिला–नरेश थे। रामसिंह देव के शासन काल में सिर्फ मिथिला ही विदेशी एवं विधर्मी मुसलमानों के आघातों से बची हुई थी। आक्रमणकारियों के प्राबल्य से अन्य प्रदेशों का जन–जीवन अस्त–व्यस्त हो चुका था जहाँ से विधा–व्यसनी, साहित्यसेवी, संस्कृतज्ञ मनीषी–समुदाय शांति एवं सुव्यवस्था की खोज में तथा जीविकोपार्जन–हेतु मिथिला के राजदरबार में आकर आश्रय प्राप्त किए।[2] इस प्रकार परिस्थितिवश ही सही, उत्तर भारत के लगभग सभी स्थानों के संस्कृतज्ञ एवं साहित्यसेवी विद्वान भूपति रामसिंह देव की राजसभा की शोभा बढ़ा रहे थे। परिणामस्वरूप उस काल में मिथिला में संस्कृत–साहित्य तथा साहित्य की अन्य विधाओं में काफी उन्नति हुई। रामसिंह देव स्वयं उच्च कोटि के विद्वान थे और विद्वानों का आदर करते थे। उनके

शासनकाल में अनेक अमर साहित्यिक ग्रंथों का सृजन हुआ। उनके मंत्री श्रीकारा आचार्य ने 'व्याख्या अमर्त' नामक ग्रंथ लिखे। रामसिंह देव के देखरेख में रत्नेश्वर मिश्र ने 'रत्नदर्पण' नामक ग्रंथ की रचना की। उनके शासनकाल में वैदिक एवं स्मार्त धर्म के पोषक निगूढ़ दर्शनों पर विवेचनापूण्र कई भाष्य की रचना की गई।

कर्णाट कुल में हरिसिंह देव बहुत प्रसिद्ध भूपति हुए थे। इनका शासनकाल 1303 ई. से 1324 ई. तक रहा। हरिसिंह देव वीर योद्धा एवं रण–कुशल सेनानी थे। वे विधा तथा कला के पोषक और निर्माता थे। उनके शासनकाल में अनेक अमर ग्रंथों की रचना की गई। देवादित्य के पुत्र वीरेश्वर ने 'आहिनेकोद्वार' तथा 'गंगा पत्तलक' की रचना की। सन् 1314 ई. में हरिसिंह देव के विद्वान मंत्री चण्डेश्वर ठाकुर ने 'समृति रत्नाकर' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया जो सात खण्डों में विभाजित था। इसलिए इन्हें 'सप्त रत्नाकर' माना जाता है। ये रत्नाकर हैं–कृत्य रत्नाकर, दान रत्नाकर, व्यवहार रत्नाकर, शुद्धि रत्नाकर, पूजा रत्नाकर, विवाद रत्नाकर तथा गृहस्थ रत्नाकर। अन्य ग्रंथों में 'कृत्यचिन्तामणि' तथा 'राजनीति रत्नाकर' भी प्रसिद्ध है। चण्डेश्वर की पत्नी लखिमा ठकुराइन स्वयं विदुषी थी। इनके पद्य 'सुभाषित संग्रह' 'विद्याकर सहस्रक', 'रसकल्पद्रुम में लख्या' के नाम से मिलते है।

इस प्रकार चण्डेश्वर ठाकुर ने धार्मिक सामाजिक, प्रशासनिक, न्यायिक आदि सभी विषयों पर ग्रंथों का प्रणयन किया। इन सभी ग्रंथों की रचना उन्होंने अपने भूपति हरिसिंह देव की आज्ञा से की। हरिसिंह देव के अन्य मंत्री गणेश्वर ने 'सुगति सोपान' ग्रंथ की रचना की। इनके समय में कवि शंकराचार्य ज्योतिरीश्वर ने कामशास्त्र संबंधी 'पंचशायक' तथा 'धूर्त समागम' नामक प्रहसन लिखा, किन्तु ज्योतिरीश्वर की अमर कीर्त्ति का आधार उनका 'वर्ण रत्नाकर' है।

भूपति हरिसिंह देव के समय में ही इतिहास–प्रसिद्ध पंजी प्रथा उद्भूत हुई। हरिसिंह देव ने बलिया के मंगलधर मिश्र तथा शकराढ़ी के कुलपति झा प्रभृति संकलनकर्त्ताओं के सहयोग तथा चण्डेश्वर के निर्देशन में रघुदेव झा द्वारा पंजी–प्रबन्ध का निर्माण कराया। यह पंजी–प्रबंध मैथिल ब्राह्मणों और कर्ण कायस्थों में लोकप्रिय हुआ। कालान्तर में इसकी लोकप्रियता कम हो गयी। कर्ण–कायस्थों में आज भी विवाह–पद्धति इसी पर आधारित है।

विद्वता की दृष्टि से कर्णाटकाल (1097 ई. से 1324 ई.) के विहंगावलोकन से एक बार पुनः जनक–काल का स्मरणण हो आता है। जिस प्रकार उस काल में राजा और राजगुरु में कोन उच्चतर ब्रह्मवेत्ता है। इस पर शंका रहती थी। कुछ ऐसी ही कर्णाटकाल के लिए भी कही जा सकती है। इस काल के नरेश भी विद्वान थे। किन्तु पलड़ा राजगुरुओं या मंत्रियों का ही भारी नजर आता है। चिंतन का यह विषय ही उद्घाटित करता है कि कर्णाट राजा भी परम गुणी थे और मैथिल विद्वत्–परम्परा इस काल में काफी विकसित हुई।

कीर्त्ति सिंह ओइनवार वंश (1355–1526 ई.) की चौथी पीढ़ी के मिथिला–नरेश थे। कीर्त्ति सिंह महापराक्रमी तथा विद्वानों का आदर करने वाले थे। उन्हें 'राय गुरु' के विरुद से विभूषित किया गया है। इसके शासनकाल में साहित्य के सृजन में आशातीत वृद्धि हुई। विश्व–प्रसिद्ध कवि विद्यापति उनकी राजसभा की शोभा थे। उसकी राजसभा में कविवर विद्यापति के अतिरिक्त अन्यान्य विद्वान लेखकों में महान् मैथिल कवि दामोदर मिश्र का नाम प्रसिद्ध है। विद्यापति ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'कीर्त्तिलता' का प्रणयन उसके शासनकाल में ही किया था। वह ग्रंथ मिथिलापति कीर्त्तिसिंह की विमल कीर्त्ति एवं सुयश का अद्यावधि जीता–जागता स्मारक है। मनीषी–प्रवर श्री दामोदर मिश्र ने 'वाणीभूषण' नामक ग्रंथ का निर्माण किया था।

राजा भवसिंह के शासनकाल में अनेक साहित्यसेवी, मेधावी एवं कलाविद् विद्वान हुए। उनके शासनकाल में महान मैथिल दार्शनिक गंगेश उपाध्याय का आविर्भाव हुआ था। वे न्यायशास्त्र के ज्ञाता होने के साथ ही मीमांसक भी थे। उन्होंने 'न्यायतत्व–चिन्तामणि' की रचना की थी जो आज भी न्यायविषयक सर्वोत्तम ग्रंथ माना जाता है।[3] विज्ञ मुरारि कवि भवसिंह के सभासदों में से थे जिन्होंने 'शुद्धिनिबंध' नामक ग्रंथ की रचना की। हास्यरस के अवतार महाविनोदी एवं परम पंडित गोनू झा भी भवसिंह के काल में ही हुए थे। मिथिला के घर–घर में आज भी गोनू झा की विनोदप्रियता की कथाएँ प्रसिद्ध एवं प्रचलित हैं।

अपने ग्रंथों में विद्यापति ने भवसिंह का प्रायः भवसिंह नाम से ही वर्णन किया है, जो उनका पूरा नाम था। उन्होंने 'विभागसार' में राजा का छोटा नाम 'भवेश' अंकित किया है। वर्धमान उपाध्याय ने अपने ग्रंथ 'गंगा–कृत्य विवेक' में तथा मिसरू मिश्र ने 'विवादचन्द्र' में राजा भवसिंह का छोटा नाम भवेश लिखा है।

भवसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनका ज्येष्ठ राजकुमार देवसिंह मिथिला के सिंहासन पर 1410 ई. में विराजमान हुए तथा 1413 ई. तक शासन किए। महाराज देवसिंह उच्च कोटि के दानवीर थे। विद्यापति ने अपने ग्रंथ 'पुरुष परीक्षा' में देवसिंह को महान योद्धा बताया है। उन्होंने अपने ग्रंथ 'शैव–सर्वस्व–सार' में भी राजा को पराक्रमी वीर बताया है। महाराज देवसिंह बहुत उदार, कला–प्रिय एवं विद्वानों का आदर करने वाला तथा आश्रयदाता था। देवसिंह की राजसभा अनेक विद्वानों से सुशोभित थी जिसमें विद्यापति, श्रीदत्त, हरिहर तथा धर्माधिकारी महामहोपाध्याय वर्धमान उपाध्याय के नाम उल्लेखनीय है। कविश्रेष्ठ विद्यापति देवसिंह के पिता भवसिंह तथा उसके पुत्र शिवसिंह के भी समकालीन थे। देवसिंह की आज्ञा से विद्यापति ने 'भू–परिक्रमा' नामक ग्रंथ का प्रणण्यन किया। इस ग्रंथ में बलदेव के नैमिषारण्य से जनकपुर (मिथिला) तक की यात्रा का वर्णन है। मार्ग में उनको छोटी–छोटी उपदेशप्रद कहानियाँ भी कही गयी थी। उसका भी समावेश उक्त ग्रंथ में है।[4] महाराज की सम्मति तथा विद्यापति की आज्ञा से श्रीदत्त ने एक 'अग्निदान–पद्धति' नामक स्मार्तग्रंथ का संकलन किया। श्रीदत्त ने 'पुरस्कारन पद्धति' तथा 'अवस्थपाधान पद्धति' की भी रचना इन्हीं के शासनकाल में की। मुरारि कवि के पितामह हरिहर, देवसिंह के न्यायालय के प्रधान–न्यायाधीश थे। गंगेश उपाध्याय ने 'स्मृति तत्वामृत' नामक अमूल्य ग्रंथ का सृजन भी उनकी राजसभा में रहकर ही किया था। जनश्रुति के अनुसार देकुली में अवस्थित 'वर्द्धमानेश्वर' महादेव के प्राचीन मंदिर का निर्माण धर्माधिकारी महामहोपाध्याय अभिनव वर्द्धमान उपाध्याय ने करवाया था तथा शिवलिंग की स्थापना उन्होंने की थी। वहाँ अब भी एक प्रस्तर–स्तंभ हैं जिसपर निम्नांकित छन्द उत्कीर्ण है–

"जातो वंशेविल्वपंचाभिधाने धर्माध्यक्षो वर्धमानो भवेशात्"[5]

शिवसिंह मिथिला के सिंहासन पर 1413 ई. में विराजमान हुए। वे मिथिला के सिंहासन पर बैठकर केवल 3 वर्ष 9 महीने शासन किये। वे ओइनवार कुल के सबसे प्रसिद्ध राजा हुए। राजा शिवसिंह शूर एवं पराक्रमी होने के साथ ही अति उदार, दानी, विधा–व्यसनी कला–कौशल के पोषक विद्वानों के आश्रयदाता एवं निर्माण–प्रिय नरेश थे। उनकी राजसभा अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों, कवियों एवं लेखकों से सुशोभित थी। संस्कृत, अपभ्रंश तथा पुरानी मैथिली के अनेक ग्रंथ इनके काल में प्रणीत हुए। साहित्य की उन्नति इस काल में चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। इसलिए इस काल को भी मिथिला के इतिहास का 'स्वर्णयुग' कहा जाता है। विद्यापति ने शिवसिंह के आश्रय में रहकर अनेक ग्रंथों का सृजन किया। विद्यापति शिवसिंह के अति प्रियपात्र और राज–पण्डित थे। उन्होंने शिवसिंह की आज्ञा से 'पुरुष–परीक्षा' की रचना की थी। उनकी 'कीर्त्तिपताका' भी शिवसिंह के कीर्त्ति–कलाप एवं सुयश–गान से ओत–प्रोत तथा परिपूर्ण है। अमर कवि विद्यापति की 'पदावली' में शताधिक पदों में शिवसिंह का नाम, उसकी प्रिय रानी लखिमा देवी के साथ आया है।

विद्यापति ने उसकी कीर्त्ति को अपने ललित एवं भावपूर्ण मनोहर पदों द्वारा अमर बना दिया। आज भी तिरहुत तथा मिथिला के असंख्य आबालवृद्ध नर–नारियों की जिह्वा पर कवि के मनोमुग्धकारी गीत नृत्य करते दृष्टिगत होते हैं। ईश–भजन, हरि–कीर्त्तन, यज्ञोपवीत अथवा विवाहोत्सव सब में विद्यापति अपने पदों के साथ उपस्थित पाये जाते हैं। राजा शिवसिंह के मंत्री महामनीषिप्रवर अच्युत ठाकुर ने 'मधुमती' नामक ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' के भाष्य के रूप में लिखा। शिवसिंह की पटरानी लखिमा रानी भी भारतवर्ष की महामनीषिणी महिलाओं में एक थी। शिवसिंह की राजसभा में दार्शनिक विचारों का स्रोत सदा प्रवाहित होता रहता था। वहाँ के विद्वान सतत् शास्त्र–चिंतन एवं मनन में तत्पर रहा करते थे, जिसका प्रचार जनपद में सवभावतः होता रहता था। परिणामस्वरूप वैदिक, शास्त्रीय एवं स्मार्त साहित्य की सम्वृद्धि एवं उन्नति उस काल में विशेष रूप से हुई।

शिवसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनकी पत्नी लखिमा रानी 1416 ई. से 1428–29 ई. तक मिथिला के सिंहासन से शासन की। शिवसिंह प्रिया लखिमा रानी अत्यंत विदुषी होने के साथ–साथस चुभती हुई कविता करनेवाली महिला–रत्न थीं। इनकी कई रचना विद्वत् मंडली में ख्याति–प्राप्त कर चुकी थी। उनकी प्राप्य संस्कृत कविताओं को मिथिला का विद्वत् समाज बड़े ही चाव से पढ़ता है। अपने पति के समान ही वह विद्यापति की आश्रयदात्री तथा समादर करनेवाली थीं। कवि कोकिल विद्यापति ने भी अंतिम साँस तक सम्पत्ति एवं विपत्ति में बराबर एक भाव से उनका साथ दिया और अपने ललित पदों के द्वारा उनके नाम को राजा शिवसिंह देव के नाम के साथ अमर बना दिया।

विश्वासदेवी 1430 ई. से 1442 ई. तक मिथिला के सिंहासन पर आसीन रहीं। वह लखिमा रानी के समान विदुषी नहीं थी। परंतु वह भी विद्याप्रेमी तथा विद्वानों को आश्रय देनेवाली शासिका थी। उसके आश्रय में रहकर कवि कोकिल विद्यापति ने 'शैव–सर्वस्व–सार' का लेखन किया तथा 'शैवसर्वस्वासार प्रमाणभूत पुराणसंग्रह' एवं 'गंगावाक्यावली' नामक ग्रंथों का भी प्रणयन किया था। ये ग्रंथ विश्वास देवी की प्रशस्तियाँ एवपं श्लाघन से परिपूर्ण है।

नरसिंह देव 1444 ई. में मिथिला के सिंहासन पर आसीन हुए। विद्यापति ने अपने ग्रंथ 'दुर्गाभक्ति तरंगिणी' में नरसिंह को महान योद्धा, महादानी एवं महामनीषी बताया है। इन्होंने राजाज्ञा से न्यायिक कार्यवाही संबंधी पुस्तक 'विभागसार' लिखी थी, जिसके अनुसार ही उसके शासन–कार्य चलते थे। वह पुस्तक उसके शासन की पथ–प्रदर्शिका संहिता थी। नरसिंह के आश्रय में विद्वान सुधाकर ने ज्योतिष का प्रसिद्ध ग्रंथ 'रत्नावली' तथा व्याकरण एवं तर्कशास्त्र पर पुस्तकें लिखी थी।

धीरसिंह 1460 ई. से 1462 ई. तक मिथिला के सिंहासन पर विराजमान रहे। राजा धीरसिंह अपने पूर्वजों की भाँति दानी, विद्या एवं कला के पोषक थे। वे विद्वानों और कवियों के आश्रयदाता तथा आदर करने वाले थे। इनकी राजसभा अनेक लब्धप्रतिष्ठ कवियों, लेखकों एवं पंडितों से सुशोभित थी। महामहोपाध्याय सुधाकर के पुत्र रत्नेश्वर, महामहोपाध्याय रुचि मिश्र, महामहोपाध्याय वटेश्वर, मधुसूदन मिश्र, द्वैतनिर्णय के प्रसिद्ध प्रणेता पं0 वाचस्पति मिश्र, महामहोपाध्याय नरहरि झा, मुख्यन्यायाधीश धर्माधिकारणिक जगद्धर आदि मनीषी–प्रवर अपनी ज्ञान–प्रभा से उसके राज–प्रासाद को ज्योतित कर रहे थे। इन विद्वानों ने अपनी अमर कृतियों से संस्कृत साहित्य के भण्डार को अनेकशः साहित्यिक एवं धार्मिक ग्रन्थ–रत्नों की रचना कर भर दिया।

धीरसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका अनुज भैरव सिंह राज्य–सिंहासन पर आरूढ़ हुए। भैरवसिंह मिथिला में शिवसिंह के बाद ओइनवार वंश में सबसे प्रसिद्ध हुए। इनका शासनकाल संस्कृत–विधा के विकास हेतु 'स्वर्ण–युग' माना जाता है। इनके शासनकाल में अनेक दार्शनिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक ग्रंथों की रचना हुई। भैरव सिंह के आश्रय में रूचिपति ने 'अनर्घराघवटीका' का लेखन पूरा किया था। विद्वत्चूड़ामणि अभिनव वाचस्पति मिश्र ने 'व्यवहार चिन्तामणि', 'विवाद चिन्तामणि' 'कृत्य महार्णव', 'महादान निर्णय', 'द्वैत निर्णय', 'कृत्यचिन्तामणि', द्वैत चिन्माणि' तथा कई अन्य ग्रंथों का प्रणयन उनके शासनकाल में समाप्त किया। इनके ही शासनकाल में परम प्रसिद्ध पंडित पक्षधर मिश्र ने 'नव्यन्यायालोक' तथा 'तिथि–चन्द्रिका' तथा वर्द्धमान उपाध्याय ने 'दण्ड विवेक' ग्रंथ लिखे।

राजा भैरवसिंह देव की मृत्यु के उसके पुत्र रामभद्रसिंह देव मिथिला के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। अपने पिता के ही समान रामभद्रसिंह देव दानी, प्रियदर्शी, सुधी–समाज का तोषक एवं संस्कृत–विधा का पोषक था। मनीषी प्रवर महापण्डित वाचस्पति मिश्र ने स्मार्त्तो को आनंद देनेवाला अपना अंतिम स्मृति–ग्रंथ 'पितृ–भक्ति–तरंगिनी' का प्रणयन उनके आश्रय में रहकर किया था। राजा रामभद्रसिंह देव से प्रेरणा पाकर विद्वान् वर्द्धमान ने 'गंगाकृत्यविवेक' एवं अन्यान्य ग्रंथ तथा पंउित विभाकर ने 'द्वैत विवेक' की रचना की थी। वाचस्पति मिश्र के आदर्श विद्वान पुत्र नरहरि मिश्र ने भी रामभद्रसिंह देव के शासनकाल में ही अपनी अलौकिक प्रतिभा से मिथिला को चमत्कृत किया था।

मिथिला में ओइनवार राजकुल के शासन का अंत 1526 ई. में हुआ। खण्डवला राजकुल के संस्थापक महामहोपाध्याय महेश ठाकुर को 1556 ई. में मिथिला का राज्य प्राप्त हुआ। सन् 1526 ई. से लेकर 1556 ई. के बीच की मिथिला का इतिहास पूर्णरूपेण ज्ञात नहीं है। महेश ठाकुर सिर्फ एक शासक ही नहीं, अपितु उत्कृष्ट विद्वान् थे। उन्हें वैदुष्य के बल पर ही मिथिला–राज्य प्राप्त हुआ था। वे प्रसिद्ध विद्वान् पक्षधर मिश्र के शिष्य थे। महेश ठाकुर ने अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। उन्होंने 'अकबरनामा' का संस्कृत में 'सर्वदेश वृत्तांत संग्रह' नाम से अनुवाद किया। मिथिला के विद्वान डॉ. सुभद्र झा के सम्पादकत्व में यह पुसतक प्रकाशित है। महेश ठाकुर ने गंगेश के 'चिन्तामणि' पर, पक्षधर के 'आलोक' पर दर्पण लिखकर पुत्र गोपाल ठाकुर को समर्पित किया। महेश ठाकुर द्वारा विरचित अन्य ग्रंथ है–'दयासार', तिथि तत्त्वाचिन्तामणि' तथा 'अतिचार निर्णय'। प्रसिद्ध धौत परीक्षा का आरंभ महेश ठाकुर के ही समय में हुआ था।[6]

महेश ठाकुर की मृत्यु के पश्चात् सन् 1569 ई. में गोपाल ठाकुर मिथिला के सिंहासन पर विराजमान हुए। गोपाल ठाकुर स्वयं उच्चकोटि के विद्वान थे। अकबर का शाही दरबार उनकी योग्यता तथा प्रबंधन कौशल का कायल था। इनके अनुज परमानन्द ठाकुर को 'मिथिला पंजी' में राजर्षि परमानन्द के रूप में अभिहित किया गया है। राजर्षि परमानन्द ने 'सिद्धान्त सुधा', 'तिथि पत्र सारणी' 'भगभिन्नर्णवा' आदि ग्रंथों की रचना की। सोन कवि मिथिला नरेश गोपाल ठाकुर के दरबारी कवि थे जिन्होंने अनेक काव्यों की रचना की।

महीनाथ ठाकुर ने 1668 ई. से 1690 ई. तक मिथिला के राज्य–सिंहासन को सुशोभित किया। वे साहित्य तथा संस्कृति के महान संरक्षक थे। इनके शासनकाल में खण्डवला कुल ने अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त किया। इन्हीं के शासनकाल में यह भी निर्णय लिया गया कि भविष्य में मिथिला–राज्य का बँटवारा नहीं होगा तथा उसी के अनुरूप राज्य के उत्तराधिकारी के लिए नियम भी बना दिये गये। इनके दरबार में प्रसिद्ध कवि लोचन रहते थे जिन्होंने 'राजतरंगिणी' तथा 'नैषध काव्य' की रचना की।

सन् 1701 ई. में महीनाथ ठाकुर के भतीजा तथा नरपति ठाकुर के पराक्रमी पुत्र राघव ठाकुर 'सिंह' की उपाधि धारण कर राजसिंहासन पर आसीन हुए। महाराज दरभंगा के खानदान के लोगों में पहले–पहल राघव सिंह को 'राजा' की उपाधि बादशाह औरंगजेब के द्वारा मिली थी।[7] राघव सिंह तथा बेतिया नरेश ध्रुव सिंह के बीच हुए युद्ध का वर्णन उनके एक दरबारी कवि राय कवि ने किया है। इस युद्ध में राघव सिंह ने ध्रुव सिंह को

पराजित किया था। इनके शासनकाल में उजान के कल्याण झा ने शिव प्रतिष्ठा पद्धति बनायी जिसके आधार पर राघवेश्वर महादेव की प्राण प्रतिष्ठा हुई। इनके ही समय में हरिहर ने 'भर्तृहरि निर्वेद नाटक', 'हरिहर सुभाषित' तथा 'प्रभावती परिणय' नाटक की रचना की।

राजा राघव सिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र विष्णुसिंह राज्य का उत्तराधिकारी हुए और इन्होंने 1739 ई. से 1743 ई. तक मात्र 4 वर्ष मिथिला पर शासन किये। विष्णु सिंह के निधन के पश्चात् उनके अनुज नरेन्द्र सिंह सन् 1743 ई. में मिथिला के सिंहासन पर विराजमान हुए। मिथिला नरेशों में नरेन्द्र सिंह जैसा शूरवीर और विजेता कोई दूसरा नहीं हुआ। मिथिला के महाराज नरेन्द्र सिंह का शासनकाल (1743 ई.–1760 ई.) मिथिला के लिए स्वर्णिम था। मिथिला के महाराज नरेन्द्र सिंह जहाँ अस्त्र–शस्त्र के सक्षम संधारक थे, वहीं साहित्य–शास्त्र के अनुरागी साधक भी थे। काली और सरस्वती भगवती के ये दोनों रूप उनमें साकार थे। अपने शासनकाल में इन्होंने चार युद्ध किये और सभी युद्धों में विजय प्राप्त किये। इन सभी युद्धों में कन्दर्पी घाट का युद्ध जो 4, 5, 6 तथा 7 अक्टूबर, 1753 ई. हुआ, सर्वाधिक प्रसिद्ध है। कन्दर्पीघाट की लड़ाई का चाक्षुष वर्णन मंगरौनी निवासी लाल कवि ने अपनी रचना ''कन्दर्पीघाट की लड़ाई'' में किया है जिसका प्रकाशन राजप्रेस दरभंगा द्वारा 1927 ई. में किया गया। मिथिलांचल के साहित्य–सागर में कन्दर्पीघाट का दूसरा चाक्षुष विवरण गोपाल कवि कृत 'श्रीमत्खण्डवलाकुलविनोद' में आद्योपान्त उपलब्ध है। इस कृति का प्रकाशन राजा दरभंगा द्वारा 1921 ई. में किया गया।

महाराज नरेन्द्र सिंह जितने पराक्रमी थे उतने ही साहित्य के प्रेमी भी। वे ईश कवि, चन्द्र कवि, गोपाल कवि, गौरी कवि, लाल कवि प्रभृति विद्वानों के आश्रयदाता थे। ईश कवि ने इन पर 'नरेन्द्र विजय' नामक ग्रंथ की रचना की थी। गोपाल कवि ने 'श्रीमत्खण्डवलाकुलविनोद' के अतिरिक्त 'काव्य–मंजरी' तथा 'काव्य प्रदीप' की रचना की थी। रमापति झा ने 'रूक्मिणीहरण' नाटक नरेन्द्र सिंह के संरक्षण में लिखा था। कवि शेखर मंजन, चक्रपाणि एवं निधि ने भी नरेन्द्र सिंह के पिता राघव सिंह और अग्रज विष्णुसिंह के साथ नरेन्द्र सिंह का भी संरक्षण पाया था। मनबोध ने 'कृष्णजन्म' की रचना इन्हीं के शासनकाल में की थी।

महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह 1879 ई. में मिथिला के राजसिंहासन पर विराजमान हुए। महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह अत्यंत विद्यानुरागी, कला तथा संस्कृति के पोषक और विद्वानों के संरक्षक थे। म.म. कन्हाई झा, नैयायिकप्रवर बबुजन झा, वैयाकरण हली झा, नैयायिक विश्वनाथ झा, म.म. श्री चित्रधर मिश्र, वैयाकरण हर्षनाथ झा, वैयाकरण केदारनाथ झा अधरी, वैयाकरण श्रीकृष्ण मिश्र, नैयायिक चुम्बे झा, नैयायिक ऋद्धिनाथ झा, नैयायिक केदार भट्टाचार्य, म.म. पं. शिवकुमार मिश्र, वैदिक युगलकिशोर पाठक तथा कविकुलभूषण चन्दा झा प्रभृति विद्वान् महाराज लक्ष्मीश्वर के राज्याश्रित थे।

निष्कर्ष

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मिथिला के कर्णाट वंश (1097 से 1324ई.), ओइनवार वंश (1355ई. से 1526ई.) तथा खण्डवला वंश (1556 से 1962ई.) के लगभग सभी नरेशों ने अपने–अपने समकालीन साहित्यकारों, विद्वानों तथा मनीषियों को राजदरबारों में उच्च स्थान प्रदान किये। उन्हें सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की। साहित्यकारों तथा विद्वानों से सुशोभित राजदरबार नरेशों के लिए गर्व का पर्याय हुआ करता था। परिणामस्वरूप मिथिलांचल की धरती दर्शन, भक्ति, श्रृंगार रस ओर वीररस से संबंधित साहित्य को समृद्ध करने में अग्रणी रही।

सन्दर्भ

1. संपादक डॉ. रंगनाथ चौधरी, 'सहदेव सुषमा : पंडित सहदेव झा स्मृति–ग्रंथ', मनोलिता प्रकाशन, दरभंगा, पृ. 338
2. डॉ. राम प्रकाश शर्मा, 'मिथिला का इतिहास', का.सिं.द. संस्कृत विश्वविद्यालय, द्वितीय आवृत्ति, 2002, पृ. 226–227
3. संपादक डॉ. रंगानाथ चौधरी, 'सहदेव सुषमा : पंडित सहदेव झा स्मृति–ग्रंथ', मनोलिता प्रकाशन, दरभंगा, पृ. 339
4. श्याम नारायण सिंह, 'हिस्ट्री ऑफ तिरहुत', महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह कल्याणी फाउण्डेशन, दरभंगा, 2012, पृ. 71
5. डॉ. राम प्रकाश शर्मा, 'मिथिला का इतिहास', का.सिं.द. संस्कृत विश्वविद्यालय, द्वितीय आवृत्ति, 2002, पृ. 271
6. परमेश्वर झा, 'मिथिला तत्त्व–विमर्श', पृ. 151
7. बिहारी लाल फितरत, 'आईना–ए–तिरहुत', सम्पादक–हेतुकर झा, महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह कल्याणी फाउण्डेशन, दरभंगा, 2001, पृ. 34